GAP भाषा
A MULTILINGUAL JOURNAL OF RESEARCH
(ISSN – 2582-8770)
Globally peer-reviewed and open access journal.

ईश्वर की सर्वज्ञता और मनुष्य की संकल्प स्वतंत्रता: भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में

Vaniya Bipinkumar Mohanbhai

Assistant Professor
Shree M.P.Shah Arts And Science College
Surendranagar
Email:vaniyab426@gmail.com

दर्शन में ईश्वर के तीन तात्त्विक गुणो को माना गया है। वे तीन गुणो मे सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वज्ञ होना है। पहला गुण है सर्वशक्तिमान होना। सर्वशक्तिमान होने का मतलब है कि ईश्वर सब कुछ कर शकता है। ईश्वर मे सभी वस्तुओं को उत्पन्न करने, उन्हे कायम करने और नष्ट करने की क्षमता है। दुसरा गुण है उनका सर्वव्यापक होना। सर्वव्यापक का अर्थ है , ईश्वर जगत में सर्वत्र व्याप्त है। वह ब्रह्माण्ड के कण कणमे हाजिर है। और तीसरा गुण है ईश्वर का सर्वज्ञ होना। सर्वज्ञ होना का अर्थ है , वह सब कुछ जानता है। उसे भूत , भविष्य और वर्तमान की सभी घटनाओं का पूर्वज्ञान है।

धर्म दार्शनिकों का मानना है की ईश्वर की सर्वज्ञता का कारण यह है कि उसने समूचे ब्रह्माण्ड की रचना की है और वह उसमें सर्वत्र व्याप्त है। ईश्वर का अनुभव किसी विशेष वस्तु या घटना का अनुभव न होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का अनुभव है। मनुष्य की सीमित चेतना के विपरीत ईश्वर की चेतना विश्व व्यापी है , जिसकी परिधिमें सबकुछ आ जाता है।[1]

उपर्युक्त तीनो मतो मे कठिनाईयां है, लेकिन हम यहां ईश्वर की सर्वज्ञता को मानव की संकल्प स्वतंत्रता से जो विरोध दिखाई पडता है वो जानेंगे।

नीतिशास्त्र की तीन गृहित मान्यतायें है। जिस को मानने से ही नीतिशास्त्र संभव बनता है। ये है आत्मा की अमरता, ईश्वर का अस्तित्त्व और मनुष्य की संकल्प स्वतंत्रता। नीतिशास्त्र मे मनुष्य के कर्म और उससे जुडे कर्मफल की सही व्याख्या आत्मा की अमरता और खासतौर से मनुष्य की संकल्प स्वतंत्रता से ही संभव है। लेकीन अगर हम जो ईश्वर को सर्वज्ञ मानते है तो मनुष्य के संकल्प स्वतंत्रता को आघात आता है। और अगर मनुष्य की संकल्प स्वतंत्रता को मानते है तो ईश्वर की सर्वज्ञता खंडित होती है। इसको आगे हम विस्तृत तरह से जानते है। पहले हम ईश्वर की सर्वज्ञता क्या है वो जानेंगे और बाद मे मनुष्य की संकल्प स्वतंत्रता को जानेंगे फिर दोनो के बीच के सबंध को समजेंगे।

ईश्वर की सर्वज्ञता:

व्यक्तित्त्वपूर्ण ईश्वर का एक महत्त्वपूर्ण तात्त्विक गुण सर्वज्ञता है। ईश्वर की सर्वज्ञता का अर्थ है की वो सब जानता है, यानी की उसे भूत, भविष्य और वर्तमान की घटनाओं का पूर्ण ज्ञान है।

सांख्यदर्शन ईश्वर का निषेध करता है। ईश्वर को सिद्ध करने का कोई प्रमाण नही है। प्रमेयसिद्धिः प्रमाणसिद्धिः के सिद्धांत को मानने वाले प्रमेय की असिद्धि और प्रमेय के अभाव को अलग नही मानते। वे मानत है की अगर प्रमेय है तो कोई न कोई प्रमाण से वो अवश्य ही ग्राह्य होगा। लेकीन अगर ईश्वर है ही नही तो श्रुतिस्मृतिमे जो **'सर्वज्ञ'** ईश्वर की बात की है ईसका क्या अर्थ है? सांख्यमत है की एसे वाक्य सिद्धपुरुषों को उदेश के कहे गयें हैं। ईस सिद्ध पुरुषो से प्रकृतिलीन जीवो का सूचन होता है। जो पूर्व सर्ग मे प्रकृतिमे लीन हुए होते है और पुनः नये सर्ग के आदिकालमे सब चीजों को यथायोग्य जाननेवाला आदिपुरुष होता है सांख्य एसे अनित्य ईश्वर को मानता है।[2]

न्यायसूत्र के रचयिता गौतममुनि बताते है की कर्म और कर्मफल के बीच के सबंध मे भले ही ईश्वर की आवश्यक्ता न हो लेकीन ईच्छित फल प्राप्ति हेतु कोन सा कर्म करना और कौन सा नही करना चाहिये। ईस कर्म का फल यह है। कोन सी दवा से कोन सा रोग मीटता है। अर्थात् ईच्छित फल प्राप्ति हेतु फल के अनुरुप कार्य कोनसा है उसका ज्ञान कर्ता को अवश्य होना चाहिये। यह ज्ञान लौकीक बातों के लिये तो निष्णात से जान पाते है लेकीन रागादि दोषो को हटाने के लिये कोन से कर्म किस कक्षा से करने है, कौन सी साधना करनी है उसका ज्ञान तो सिर्फ रागादि से मुक्त सर्वज्ञ ईश्वर को ही हो सकता है। ईसलिये कर्म और उसके फल के बिच के नियत संबंध है , लेकिन उस नियत संबंध को जानने के लिये सर्वज्ञ ईश्वर की हम(जीव) को आवश्यक्ता है एसा मत सिद्ध होता है। ईश्वर सिर्फ हमे उपदेश देते है , हमारा मार्गदर्शन करते है। कर्मफल के नियत संबंध का ज्ञान करानेवाले है।

वात्स्यायनने ईश्वर को सर्वज्ञाता माना है। 'सब द्रव्यो का, उनकी सब अवस्था के साथ, ज्ञान रखने वाला' सर्वज्ञ का ख्याल सांख्य-योग का है। सांख्य-योग का जीवन्मुक्त अनन्त ज्ञान वाला है और वो सब ज्ञेयो को जानता है। वात्सायन को 'सर्वज्ञ' का एसा अर्थ अभिप्रेत है या नहि वह निश्चित तौर से कह नही सकते। ईन्द्रियां अपने-अपने विषय को ग्रहण करती है , जबकी आत्मा- रुप , रस , गन्ध , स्पर्श और शब्द जैसे पांचो को ग्रहण करतां है। ईसलिये आत्मा 'सर्वज्ञ' है और ईसलिये ईन्द्रियो से भिन्न है एसा वात्सायन ने एक जगह कहां है। यहां संदर्भ कर्मफल का है इसलिये कर्मफल के नित्यसंबंध को जाननेवाला फल और कर्म को जाननेवाला एसा 'सर्वज्ञ' शब्द का अर्थ होता है। ईस अर्थ मे जीवन्मुक्त ही सर्वज्ञ है। वात्स्याययने जीवनमुक्त की योगमान्य सर्वज्ञता को ही स्वीकृत की हो एसा संभव है। वात्स्यायन के मुताबीक मोक्षमार्ग के उपदेशक , सर्वज्ञ, विवेकी, क्लेशमुक्त, जीवनमुक्त पुरुष ही ईश्वर है एसा फलित होता है।[3]

श्रीधर ईश्वर की संख्या के आधार पे उनकी सर्वज्ञता की व्याख्या करते है। श्रीधर कहते है की ईश्वर एक ही है क्युंकी ईश्वर अनेक हो और असर्वज्ञ हो तो फीर वह जीवों की तरह सृष्टि करने को असमर्थ होता। अब ईश्वर को अनेक मान के सब को सर्वज्ञ माना जाय तो एक से ज्यादा ईश्वर मानने का कोई प्रयोजन नही रहतां क्युंकी सर्वज्ञ एक ईश्वर से सृष्टि आरंभ हो जायेगी। चूंकी, सभी ईश्वर सर्वज्ञ होने के नाते समकक्ष है और इसलिये उनके बीच मतैक्य होना संभव नही है। इसलिये अनेक सर्वज्ञ ईश्वर मानने से अच्छा एक ईश्वर को मानना है। अब अनेक सर्वज्ञ ईश्वर को माना जाय तब उनमे से एक ही ईश्वर के अभिप्राय को बाकी सब ईश्वर मान के उस अनुसार ही रहते है एसा माना जाय तो वह पहला ईश्वर वाकैय मे ईश्वर कहलाने को लायक है। दुसरे सर्वज्ञ नही। अगर माना जाये की व्यक्तिगत मतभेद उपरांत उनकी परिषद के सृष्टिकार्य करने निर्णय की वजह से वे सब ईश्वर एकदुसरे का विरोध कीये बिना सृष्टि कार्य करते है, तो इसका अर्थ उनमें से कोई एक ईश्वर नही है। ईसपर से सिद्ध होता है की ईश्वर एक और सर्वज्ञ है।[4] ईश्वर सर्वज्ञ है ईसलिये कोई भी विषय का कोई भी विशेष उससे अज्ञात नही है।

उदयनाचार्य अपनी ईश्वर के अस्तित्त्व की प्रत्ययतः वाली दलील मे वेदों की प्रमाणीक्ता के आधार पे ईश्वर की सर्वज्ञता का उल्लेख कीया है। उदयनाचार्य कहते है की रागादी दोषो से रहीत व्यक्ति ही वस्तु को यथार्थ जान पाता है और जेसी वस्तुओ को जाना है वैसा ही निरुपण कर पाता है; रागादि दोषरहित व्यक्ति ही सर्वज्ञ है। इसलीये वेद का प्रामाण्य राग आदि दोषरहित सर्वज्ञ व्यक्ति को अर्थात ईश्वर को साबित करते है।[5]

[1] दीपसिंह(२०११), दर्शनशास्त्र, अरिहंत प्रकाशन, मेरठ, पेज-३५२
[2] शाह नगीन जी,(२०१६), सांख्य-योग, युनिवर्सिटी ग्रन्थ निर्माण बोर्ड, अहमदाबाद, पेज-२१९
[3] शाह नगीन जी(१९९९), न्याय-वैशेषिक, युनिवर्सिटी ग्रन्थ निर्माण बोर्ड, अहदावाद, पेज-२२४
[4] Ibid- पेज-२३६
[5] Ibid- पेज-२३९

https://www.gapbhasha.org/

GAP भाषा
A MULTILINGUAL JOURNAL OF RESEARCH
(ISSN – 2582-8770)
Globally peer-reviewed and open access journal.

मनुष्य की संकल्प स्वतंत्रता:-

संकल्प स्वातंत्र्य नैतिकता का एक आवश्यक आधार है। जब मनुष्य मे ईच्छा संघर्ष होता है तब वह अपनी स्वतंत्र इच्छा से किसी एक को चुन लेता है। यदि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र नही है, अर्थात उसका संकल्प बाह्य परिस्थितियों से नियत है तो अपने कर्मो के लिए वह उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। हमारा संकल्प ही बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर हो तब तो हमारी इच्छा या अनिच्छा का प्रश्न ही नही रहता। यहि मनुष्य बाह्य परिस्थितियों और प्राकृतिक प्रवृतियों के विरुद्ध कर्म नहीं कर सकता तो वह किसी निर्जीव पदार्थ से उच्च नहीं है। तब तो वह एक यंत्र के भांति ही है। संकल्प स्वातंत्र्य को सत्य माना जाय तो ही अच्छाई-बुराई, कर्तव्य-अकर्तव्य आदि का विचार कर सकते है।

संकल्प स्वातंत्र्य नीतिशास्त्र का गृहिततत्त्व है। स्वातंत्र्य में व्यक्ति की पसंद का प्रश्न खडा होता है और पसंदगी के लीये दो या ज्यादा विकल्प आवश्यक है और उनमे से एक की पसंदगी करनी होती है। विकल्प ही न हो तो किसी भी विकल्प के स्वीकृत करने की स्वतंत्रता ही नही रहती। शुभाशुभ कर्म के बीच का भेद ही नीतिशास्त्र का आधार है। संकल्प स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता नही है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हमारी प्रत्येक मानसिक प्रक्रिया का कारण होता है। जो हमने किसी परिस्थिति में कुछ संकल्प किया तो उसका भी कोई कारण अवश्य होगा। हम वैसा ही संकल्प करने जैसा अभ्यास है, अर्थात जैसा आचरण करते आये है। हमारा संकल्प हमारे चरित्र से नियंत्रित होता है, पर यह बन्धन बाह्य नही होता। संकल्प एक तरह का आत्मनियंत्रण है।

संकल्प स्वातंत्र्य एक नैतिक मान्यता है। इसके अनुसार मनुष्य अपने कर्मो मे स्वतंत्र है। वह स्वयं अपने कर्मो का निर्णय करता है। कर्मो के निर्णय बाह्य स्थिति और मानसिक स्थिति का प्रभाव अवश्य होता है, पर अन्तिम चुनाव में उसे उनके प्रतिकुल संकल्प की स्वतंत्रता है।[6]

एकतरह एसे कहा जा सकता है की हमारे संकल्प वास्तव मे हमारे होते है तो वह हमारी आंतरिक स्वतंत्रता है और हमारे संकल्पो के मुताबीक हमे बर्ताव करने की हमे छूट मीले तो वह हमारी बाह्य स्वतंत्रता है। ये दोनो परस्पर सहायक है। फिर भी मूल बात ये है की हमारे संकल्प वास्तव मे हमारे है? नैतिक दृष्टि से एसा कहा जा सकता है की केवल मनुष्य ही जिम्मेवारीयुक्त बर्ताव कर पाता है। विचारयुक्त बर्ताव और विकल्पो मे से योग्य अयोग्य का निर्णय करके चलने की अपनी शक्ति के कारण मनुष्य स्वतंत्रता का अधिकारी है।[7]

मात्र कर्मस्रोतों के अस्तित्त्व से कोई कर्म संपन्न नही हों सकता। कर्म के संपन्न होने के लिये इन स्रोतों से उत्पन्न इच्छाओं के अनुरुप कर्ता को संकल्प लेना पडता है। मुझे भुख लग रही है और मैं खाने की इच्छा का अनुभव कर रहा हूं पर मैं खाने का संकल्प लेने के बदले नहीं खाने का ही संकल्प लेता हूं, क्योंकि आज मुझे उपवास करना है। इस वजह से मै भुखा होते हूए भी भोजन नहीं करता।

शंकराचार्य के मुताबिक कर्तव्य पुरुषाधिन है। पुरुष कर्म करने या न करने या अन्यथा करने को समर्थ है। मनुष्य मे सारासार के विवेक को परखने की शक्ति है और ईसलिये वो दो मे से एक की पसंद करने मे संपूर्ण स्वतंत्रता रखता है।[8] इसप्रकार वेदान्त मे संकल्प स्वातंत्र्य पुरुष का अधिकार है। आचार्य शंकरने मनुष्य के कर्म मे ईश्वरी संकेत न मानके व्यक्ति के कर्तुत्व का समर्थन कीया है।[9]

भगवद् गीता में भी हमे संकल्प स्वातंत्र्य के विचार का दर्शन होता है। एक तरह से समग्र गीता संकल्प स्वातंत्र्य का उकेल लाती है एसा कहा जा सकता है। अर्जुन की विषादमय मानसिक स्थिति मनुष्य की पराधीन स्थिति का उदाहरण है। अर्जुन ईस स्थिति में युद्ध न करने का निर्णय लेता है। वो मानता है उसका यह निर्णय उसकी स्वतंत्र बुद्धि का निर्णय है। युद्ध की तैयारीयां हो चुकी है उस बीच मे वह अपने संकल्प का प्रयोग करके युद्ध न करने का विवेकी निर्णय लेता दिखाई देता है। फिर बाद मे श्रीकृष्ण के द्वारा समजाये जाने के बाद उसका मोहभंग होता है और वह युद्ध करने का निर्णय लेता और वह अर्जुन का स्वतंत्र निर्णय था एसा हम महाभारत मे स्पष्टतौर पे देख पाते है।[10]

आगे गीता के अठारवे अध्याय के ६३वें श्लोक मे आखरी निर्णय तो तुम्हारे हाथो में ही है एसा मानो श्रीकृष्ण कहते हों वेसे इस श्लोक मे कहा है,

" इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु॥१८.६३॥"

इस का अर्थ है, 'मुझ सर्वज्ञ ईश्वरने ये गुह्य से भी गुह्य गोपनीय ज्ञान कहा है। इस उपर्युक्त शास्त्र पे भलीप्रकार शोचकर तेरी जेसी ईच्छा है वेसा कर।'

यानी ये सब कहने के उपरांत भी अब तुम तुम्हारी तरह से निर्णय लेने को मुक्त हो। तुम अपनी तरह से सोचविचार करके अपने आप ही निर्णय लो की क्या करना है और क्या नही। तो ये बात भी हमे मनुष्य की संकल्प स्वतंत्रता की रक्षण करता प्रतित होता है। मानो गीता द्वारा इश्वर कहते हो की आखिर मे तुम वही करो जो तुम्हारी बुद्धि कहती हो।

उपर हमने पहेले ईश्वर की सर्वज्ञता और मनुष्य की संकल्प स्वतंत्रता को अलग अलग जानने का प्रयास कीया। लेकीन इसके बीच कोई संबंध न होता तो कोई सवाल न था परंतु एसा नही है। ये दोनो एकदुसरे से विरुद्धात्मक सबंध हमे प्रतित होते है। कई दार्शनिक परंपराओं ने ईसे सुलझाने का प्रयास कीया है और अपने अपने तर्क हमारे सामने रखे है। अब हम ये दोनो के बीच के संबंध समझने का प्रयास करेंगे।

ईश्वर की सर्वज्ञता और मनुष्य की संकल्प स्वतंत्रता:-

धर्म दार्शनिकों का मानना है कि ईश्वर की सर्वज्ञता का कारण यह है कि उसने ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की है और वह उसमें सर्वत्र व्याप्त है। ईश्वर का अनुभव किसी विशेष वस्तु या घटना का अनुभव न होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का अनुभव है। मनुष्य की सीमित चेतना के विपरीत ईश्वर की चेतना विश्व व्यापि है, जिसकी परिधि में सबकुछ आ जाता है।

लेकिन ईश्वर की सर्वज्ञता की धारणा अनेक दार्शनिक विसंगतियों को जन्म देती है। और उन मे एक विसंगति है कि ईश्वर की सर्वज्ञता के साथ मानव की संकल्प स्वतंत्रता की संगति स्थापित नही हों पाती है। यदि ईश्वर सर्वज्ञ है तो फिर इसका आशय है कि वह भूत, वर्तमान और भविष्य को जानता है उस मे यह तथ्य भी समाहित है। मनुष्य द्वारा भविष्य में किये जाने वाले कर्मो को भी ईश्वर जानता है। एसी स्थिति में मनुष्य की संकल्प स्वतन्त्रता पर सवाल खडा हों जाता।

भारतीय दर्शन मे ईस विसंगती पर शरुआती तौर से ही विचार आरंभ हो चुका था। और गहन चिंतन के परिणाम स्वरुप महान दार्शनिक चिंतको ने हमारे सामने इस समस्या का उकेल देने का यथा प्रयास कीया हुआ है।

समस्या यह है की अगर ईश्वर सर्वज्ञ है तो मनुष्य निर्णय करने को या फिर संकल्प करने को स्वतंत्र नही रहता क्युंकी ईश्वर को पहले से ही ज्ञान है की वास्तव में होने क्या वाला है। हम कोई भी कर्म करले होने तो वो ही वाला है जो ईश्वर ने पहले से देख के रखा है। न्यायदर्शन इसका जवाब देता है कि ईश्वर केवल उपदेशष्टा है। मार्गदर्शक है, कर्मफल के नियत संबंध का ज्ञान कराने वाले है। इस अर्थ मे ही वे कर्मकारयिता है। वे प्रयत्नपूर्वक किसी के पास कर्म नही करवाताें। डॉक्टर केवल दवाईयां देता फिर भी हम कहते है की डोक्टरने रोग मीटाया। एसे ही ईश्वर केवल हमे कर्म और उसके फल का ज्ञान देता है और हम कहते की ईश्वर ने हमे कर्मफल दीया।[11]

मुनि वात्स्यायन अनुसार, कर्मफल के सिद्धांत के साथ सर्व द्रव्य को सभी अवस्था के साथ जानने वाला 'सर्वज्ञ' की व्याख्या मिलती नही है। कर्मसिद्धांत(जिसमे संकल्प की स्वतंत्रता

[6] वर्मा अशोक कुमार,(२००५), नीतिशास्त्र की रुपरेखा, पटना, मोतीलाल बनारसीदास, पेज-८४

[7] दवे किशोर एस(१९७२), गीतातत्त्वविचार, अहमदाबाद युनिवर्सिटी ग्रन्थ निर्माण बोर्ड, पेज-१५९

[8] बृह.उप.शां.भा.२-१-२० तथा छान्दो.उप.भा.६-४१

[9] रावळ.सी.वी(२०१३), श्रीमद् शंकराचार्यनुं तत्त्वज्ञान, अहमदाबाद, युनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, पेज-३९९

[10] दवे किशोर एस,(१९७२), गीतातत्त्वविचार, अहमदाबाद, युनिवर्सिटी ग्रन्थ निर्माण बोर्ड, पेज-१६३

[11] शाह नगीन जी,(१९९९), न्याय-वैशेषिक, अहमदाबाद, युनिवर्सिटी ग्रन्थ निर्माण बोर्ड, पेज-२२०

https://www.gapbhasha.org/

GAP भाषा
A MULTILINGUAL JOURNAL OF RESEARCH
(ISSN – 2582-8770)
Globally peer-reviewed and open access journal.

अत्यावश्यक है।) और इसतरह का सर्वज्ञ परस्पर विरुद्ध बात है। इसलिये, इस संदर्भ मे तो किस कर्म का कौन सा फल होता है यह जानने वाला ही सर्वज्ञ है ना की भुत, भविष्य और वर्तमान को जानने वाला।[12]

श्रीधर ईश्वर को सर्वज्ञ मानते हुए कहते है की उनको सब विषयो का ज्ञान हंमेश ही रहता है इसलिये उनमे स्मृति नही होती और संस्कार भी नही होता।[13] यानी ईश्वर मनुष्य की तरह भूत-भविष्य और वर्तमान को अलग अलग तरह से नही जानता लेकिन उनमे ये सब अखंडता है। जो भी है उनमे वर्तमान ही है।

उदयनाचार्य ने सर्वज्ञ होने की शर्त रागादि से मुक्त होने को माना है। यानी की जो रागादि से मुक्त है वो चाहे सबकुछ जानता हो फिर भी वो किसी मे हस्तक्षेप नही कर शकता क्युंकी हस्तक्षेप करने का कोई कारण ही नही रहता क्युंकी क्रिया की प्रेरणा ही रागादि दोष है जिस से ईश्वर तो मुक्त है यानी की वह इस अर्थ मे सर्वज्ञ है, जो मनुष्य जो की रागादियुक्त सीमित ज्ञान वाला है उसके संकल्प मे हस्तक्षेप नही करता।[14]

पूर्वमीमांसा दर्शन सर्वज्ञ यानी पदार्थमात्र को जानने वाले ईश्वर का ईन्कार करता है। सर्वज्ञ प्रत्यक्षतः सभी पदार्थो को जानता है एसा कहा जाये तो धर्मादि सूक्ष्म विषयों उसके ज्ञान बहार रह जायेगें। फिर अनुमान से सभी पदार्थो को जानेंगा एसा कहा जाये तो हम में और सर्वज्ञ में कोई भेद नही रह जायेगा। फिर अनुमान या आगे से होना वाला ज्ञान अस्पष्ट होता है और सर्वज्ञ को तो एसा अस्पष्ट ज्ञान हो नही शकता, एसे अस्पष्ट ज्ञान वाले को हम सर्वज्ञ नही कह सकते। ईसप्रकार जिस को हम सर्वज्ञ कह सके एसा कोई सर्वज्ञ ईश्वर अस्तित्त्वमान नही है।[15]

गीता सांख्यदर्शन की ही तरह ये सृष्टि प्रकृति मे से हुई है एसा मानती है। ये प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। गुणो की व्यापकता को देखके ये पृथ्वी पे या अन्य कीसी भी लोक मे इससे मुक्त हो एसा प्राणी हमे देखने को नही मिलता है। सिर्फ प्राणीसृष्टि ही नही जडसृष्टि भी इससे बाकात नही है। लेकीन सत्त्वगुण ऊर्ध्वगामी है और बुद्धितत्त्व सत्त्व से ही परिपूर्ण होने से पुरुष का सानिध्य प्राप्त करती है। क्षेत्ररुप शरीर जो प्रकृति का आविष्कार है इसमे इसतरह पुरुष की सन्निधि 'स्वातंत्र्य' का आभास खडा करता है। वह सच्चा स्वातंत्र्य नही है। क्युकी वह तो सिर्फ गुणातीत अवस्था मे ही संभव है। फिर भी वह स्वातंत्र्य नही है एसा भी नही कहा जा सकता। इस अवस्था मे इसे गीता का मर्यादीत या फिर सापेक्ष स्वातंत्र्य कहा जा सकता है। ईस बारे मे श्री अरविंद कहते है, कि "हमारी स्वतंत्र संकल्पशक्ति के भाग का नवदशांश भाग तो संपूर्ण काल्पनिक होता है। संकल्पशक्ति स्वयंभू कार्य से सर्जित नही होती जबकी हमारा भूतकाल, वारसा, शिक्षा और आसपास की स्थिति में से कर्म निर्मित होता है।" ईसी विचार को श्री तिलक आगे बढाते हुए कहते है की, " मूलतः शुद्ध, मुक्त एसा जिवात्मा बुद्धि, इन्द्रिय आदि के बंधन में फसा होने की वजह से मानवमन मे जो स्फुर्ति उत्पन्न करता है वही हमारी 'स्वातंत्र्य' की अनुभूति है। जैसे खुली हवा मे रही बाष्प मे ज्यादा ताकात नही होती लेकीन जैसे ही उसे कीसी पात्र में बंध कीया जाय तो उसकी ताकात बढ जाती है। एसे ही परमात्मा के अंशरुप जीव शरीर में बद्ध होके 'आत्मा के स्वातंत्र्य के रुप में प्रतीत होती है।[16]

निष्कर्ष:-

जैसे की हम देख पाते है की भारतीय दर्शन मे ईश्वर की सर्वज्ञता और मनुष्य की संकल्प स्वातंत्र्यता के बीच के द्वैत को समाप्त करने का यथायोग्य प्रयास कीया गया है। सबसे पहले तो ईश्वर की सर्वज्ञता से हम क्या सुचित करना चाहते है वो स्पष्ट करना आवश्यक है। ईश्वर सर्वज्ञ है का मतलब है की वो भूत, भविष्य, वर्तमान जैसे सभी काल का ज्ञात से है? या फिर वो सभी काल मे सभी स्थल के पदार्थो का ज्ञाता है? अगर हम ईश्वर के सर्वज्ञ होने के उपर्युक्त दो अर्थ को मानेंगे तो फिर मनुष्य की संकल्प स्वातंत्र्य के साथ खतरा खडा होता है।

लेकीन न्यायदर्शन ईश्वर को ईस अर्थ मे सर्वज्ञ नही मानता। ये दर्शन मानता है ईश्वर तीनो काल का नही लेकीन कर्म और इसके फल के बीच के नीयत संबंध का ज्ञाता है।

श्रीधर ईश्वर को सर्वधर्म को एकसाथ जानता है उस अर्थ मे उसे सर्वज्ञ मानता है। यानी की ईश्वर को हमारी तरह भूतकाल की स्मृति या भविष्य की कल्पना नही है। क्योंकी वो सब तो हम सीमित बुद्धि वालों के लीये ही स्मृति और कल्पना संभव है। चूंकी ईश्वर को तो सभी पदार्थो का ज्ञान जैसे हम वर्तमान को देखते है वेसा ही है। ईसलीये हम जिसे भविष्य मानते है वो उनके लिये भविष्य है ही नही और जिसको हम भूतकाल कहते वो भी उनके लीये वर्तमान है क्योंकी वे स्मृति नही रखता सब उनके लिये वर्तमान है। इसलिये सर्वज्ञता का अर्थ है सभी को एकसाथ वर्तमान मे देखना यानी हम जो घटना को अभी घटीत हो रही देख पाते है, वैसे ही ईश्वर सभी काल को देखते है। काल का खंड हमारी बुद्धि के लिये है ईश्वर के लिये नही इसप्रकार हमारी संकल्पशक्ति को कुछ हानी नही पहोंचती।

लेकीन जब हमारी दृष्टि की बात आती तो हम तो काल को खंडित करके देखते है। हमारे लिये वर्तमान है तो भूत और भविष्य भी है। हम जो बित गया है उसको याद रखके उनमे से सिखते है और उनमे भविष्य का निर्माण करते है.....ईसलिये हमारे मायने मे संकल्प की स्वतंत्रता का बहोत महत्त्व है। हम संकल्प करते और उस पे काम करते है। अगर हम शंकर की तरह जगत को माया मानेंगे तो तो फिर सवाल नही लेकीन अगर हम जगत को न्याय की तरह वास्तविक मानते है तो फिर हमे संकल्प पे ध्यान देना पडतां है। इसलिये हम कह सकते है की हमारी पास संकल्पशक्ति है लेकीन उतनी ही की जितने विकल्पों हमे दीये गये है। हम हमे दीये गये विकल्पो में से ही पसंद कर सकते है, उसके बहार का एक बिंदु भी हम पसंद नही कर सकते। इस संसार में हमारे पास निश्चित संख्या में विकल्प है और हमारे पास उसी विकल्पों को ही उपयोग करने की स्वतंत्रता है। दुसरे नही।

हम एसे पंछी है जो खुले पींजरे पे पैरो मे रस्सी के साथ बंधे है। हम पींजरे मे से ऊड तो सकते लेकीन उतने ही जितनी की रस्सी है। फिर तो हमे वापस उस पींजरे जाना ही है।

[12] Ibid-पेज-२२३
[13] Ibid पेज-२३७
[14] Ibid पेज-२३९
[15] रावळ.सी.वी(२०१३), शंकराचार्यनुं तत्त्वज्ञाम, अहमदाबाद, युनिवर्सिटी ग्रन्थ निर्माण बोर्ड, पेज-९५
[16] दवे किशोर एस(१९७२), गीतातत्त्वविचार, अहमदाबाद, युनिवर्सिटी ग्रन्थ निर्माण बोर्ड, पेज-१६४

https://www.gapbhasha.org/